
प्रवचन-१७२, श्लोक-२५६-२५७, गाथा-१४९, शनिवार, ज्येष्ठ कृष्ण ८, दिनांक ०५-०७-१९८०

नियमसार, १४८ गाथा । उसका श्लोक है । श्लोक २५६
आत्मावश्यं सहजपरमावश्यकं चैकमेकं,
कुर्यादुच्चै-रघ-कुल-हरं निर्वृतेर्मूलभूतम् ।

* अघ=दोष; पाप । (अशुभ तथा शुभ दोनों अघ हैं ।)

सोऽयं नित्यं स्वरसविसरापूर्णपुण्यः पुराणः,

वाचां दूरं किमपि सहजं शाश्वतं शं प्रयाति ॥२५६॥

श्लोकार्थ : आहाहा! आत्मा को अवश्य... आवश्यक यह है कि मनुष्यपना पाकर... आहाहा! अनन्त-अनन्त जीव निगोद में पड़े हैं, वे अनन्त काल में लट भी होनेवाले नहीं हैं, तो ऐसा जो मनुष्यपना मिला, आर्य कुल और जैन अवतार (मिले) तो कहते हैं कि आत्मा को अवश्य... आवश्यक यह है। आहाहा! मात्र सहज-परम-आवश्यक... वापस देखा? दूसरा कुछ नहीं। दूसरा कुछ करनेयोग्य नहीं। आहाहा! सहज मात्र। - ऐसा कहा न? अवश्य और मात्र। सहज। आहाहा! मात्र परम आवश्यक को। अकेले व्यवहार छह आवश्यक को नहीं। परम आवश्यक निश्चय। आहाहा!

निश्चय परम आवश्यक को एक को ही— एकान्त किया। कथंचित् निश्चय करना और कथंचित् व्यवहार करना, ऐसा नहीं आया। आहाहा! परम-आवश्यक एक को ही— आहाहा! जिसे आत्मा का हित करना है, उसे तो एक अवश्य आत्मा अखण्डानन्द प्रभु की ओर का लक्ष्य करके उसमें स्थिर होने का, यह अवश्य एक कर्तव्य है। आहाहा! वापस भाषा क्या है? मात्र... अर्थात् दूसरा कुछ नहीं। छह आवश्यक व्यवहार, वह नहीं। आहाहा! वह सहज-परम-आवश्यक... स्वाभाविक आनन्दस्वरूप, भगवान जो आनन्दस्वरूप, उसकी एकाग्रता, उस एक को ही... आहाहा! करनेयोग्य है। उस एक को ही करनेयोग्य है। धर्म के नाम से भी इस एक को ही करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। संसार में तो अकेला पाप है, परन्तु धर्म के नाम से करना हो तो... आहाहा! अवश्य आत्मा को एक ही आवश्यक, सहज परम-आवश्यक एक को ही—कि जो... परम आवश्यक कि जो एक ही परम आवश्यक। आनन्दस्वरूप में एकाग्रता, वह अवश्य एक ही आवश्यक। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप से भरपूर भगवान है। उस एक को ही। आहाहा! कितने शब्द प्रयोग किये हैं।

मात्र सहज-परम-आवश्यक को... व्यवहार को नहीं। मात्र कहने से व्यवहार को नहीं और यह निश्चयस्वभाव उस एक को कि जो... यह आवश्यक निश्चय जो अघसमूह का नाशक है... पुण्य और पाप के भाव का नाश (करना) वह आवश्यक है। आहाहा! अपना प्रभु परमात्मा से भिन्न नहीं, परमात्मस्वरूप ही है। जिन और जिनवर में कुछ भेद

नहीं है। आहाहा! उस ओर का मात्र स्वाभाविक अवश्य करनेयोग्य एक ही है। आहाहा! यह सब व्यवहार वापस कहा, वह कहाँ गया? वह आता है, होता है, परन्तु करनेयोग्य यह एक है। आहाहा! व्यवहार आता है। यह कहा न? सामायिक, चौविसंथो, वन्दन ऐसे छह आवश्यकों का पहले विकल्प होता है। पहले अर्थात्? निश्चय है, उसे पहले ऐसा विकल्प आता है। पश्चात् वह विकल्प तोड़कर अन्दर में जाता है। निश्चय नहीं और विकल्प तोड़कर (अन्दर) जाए, यह बात नहीं। विकल्प है, उसे लेकर जाए, ऐसा भी नहीं। आहाहा!

यह भगवान आत्मा पूर्णानन्द का सागर प्रभु मात्र सहज अवश्य आत्मा का काम अवश्य करने का एक ही है। आहाहा! इसमें सब आ गया, लो। (निश्चय) और आवश्यक आत्मा के अवलम्बन से होता है, दूसरे के अवलम्बन से नहीं। वाणी से आवश्यक नहीं होता, मन से नहीं होता, देह से नहीं होता... आहाहा! पैसा और लक्ष्मी से आवश्यक कर्म नहीं होता। पाँच-पच्चीस लाख खर्च किये, इसलिए उसे (आवश्यक कर्म हुआ, ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसा है। एक लाईन में इतना भरा है, लो! आहाहा!

आत्मा को... आत्मा को, आत्मा को अवश्य मात्र स्वाभाविक परम आवश्यक, निश्चय परम आवश्यक **एक को ही—कि...** क्यों एक को ही करनेयोग्य है? **कि जो अघसमूह का नाशक है...** पुण्य और पाप का दोनों का नाशक है। आहाहा! है नीचे? **पाप। (अशुभ तथा शुभ दोनों अघ हैं।)** आहाहा! स्वभाववस्तु जो आत्मा, उसके आश्रय बिना पुण्य और पाप के भाव का नाश नहीं होता। यहाँ तो नाश करने का (कहते हैं)। पुण्य से ऐसा हो, शुभभाव करने से अन्दर जाया जाए, यह बात तो ली नहीं। यहाँ तो इस स्वरूप का आवश्यक करने से पुण्य-पाप का अघ जो समूह, जिसे लोग मददगार कहते हैं, व्यवहार सहायक कहते हैं। उसे मात्र सहज आवश्यक यह करने योग्य है। आहाहा! **अघसमूह का नाशक है...** दो बातें।

तब वह **मुक्ति का मूल (-कारण) है...** आहाहा! आत्मा, भगवान आत्मा की एकाग्रता, आत्मा के आनन्द को पकड़कर एकाग्र होना, वह एक ही मुक्ति का मूल है। मोक्ष का मूल यह एक ही है। मोक्ष का मार्ग यह एक ही है। कोई दो कहते हों और ऐसा है और वैसा है, यह नहीं। आहाहा! है? इसमें है या नहीं? जो **मुक्ति का मूल (-कारण)**

है... परम आवश्यक क्यों?—कि प्रभु आत्मा स्वयं मुक्तस्वरूप ही है। त्रिकाल निरावरण अखण्ड एक परमपारिणामिकभाव, वह मुक्तस्वरूप है। मुक्तस्वरूप के आश्रय से मुक्ति होती है। बाकी दूसरे के आश्रय से / अवलम्बन से मुक्ति / मोक्ष, मोक्ष का मार्ग नहीं होता। आहाहा! यह झगड़ा, व्यवहार का झगड़ा। व्यवहार का ऐसा करना और व्यवहार... आता अवश्य है। रात्रि को प्रश्न नहीं होते थे? ७३ गाथा में आवे, पहले यह निर्णय करो। परन्तु वह तो निर्णय करो, ऐसा आया किन्तु उससे होता है, ऐसा नहीं। वहाँ दृष्टान्त ऐसा लिया कि जैसे जहाज को भँवर ने पकड़ा हो। समुद्र में भँवर ने जहाज को पकड़ा हो, वह भँवर छोड़े तो जहाज अलग पड़े। इसी प्रकार पुण्य-पाप के विकल्प से बन्धन में पड़ा है, उसे स्वयं छोड़े तो मुक्ति को प्राप्त हो। उससे मुक्ति को प्राप्त हो, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन लगती है।

शब्द पड़े हैं, मात्र एक ही। मात्र अवश्य... आहाहा! स्वभाव जो पूर्णानन्द, उसका ही स्पर्श, उसका ही आश्रय, उसका ही अवलम्बन, उसका ही आधार, वही एक मुक्ति का मूल और पुण्य-पाप के नाश का कारण है। आहाहा! एक लाईन में इतना सब समाहित कर दिया। बड़ा झगड़ा, व्यवहार से होता है, इससे होता है। शास्त्र में आवे न, ऐसे शब्द तो आवे, परन्तु किस अपेक्षा से? वह तो व्यवहार का ज्ञान कराने के लिये आते हैं।

उसी को—वह मुक्ति का मूल है अवश्य। सामायिक, चौविसंथा, वन्दना, यह आत्मा का ध्यान और आनन्द यह सब छह आवश्यक है। आहाहा! कठिन पड़े। **मुक्ति का मूल (-कारण) है...** बहुत न्याय दिये। अवश्य का मात्र परम-आवश्यक तो एक को ही करना है क्योंकि वह पुण्य-पाप का नाशक है और मुक्ति का मूल है। आहाहा! **उसी को— अतिशयरूप से करना चाहिए।** उसे ही विशेषरूप से-अतिशयरूप से, अतिशयरूप से-विशेषरूप से वह एक ही करनेयोग्य है। आहाहा!

मनुष्यपना प्राप्त करके यह करनेयोग्य है। नहीं तो निगोद के जीव... आहाहा! विचार करे इसे खबर पड़े। एक निगोद के अनन्तवें भाग में मोक्ष जाते हैं, ऐसे असंख्य शरीर हैं। निगोद में ऐसे के ऐसे रहनेवाले हैं। आहाहा! प्रभु! प्रभु! प्रभु! कब वह त्रस है और मनुष्य हो? कितने ही तो कभी होनेवाले नहीं हैं। त्रस ही होनेवाले नहीं हैं। आहाहा! ऐसे अनन्त जीव लहसुन और प्याज, काई में जीव पड़े रहते हैं। आहाहा! ऐसा ढेर देखे

बरसात में जब तब चारों ओर काई। पत्ते काई, नीम, घास, पूरा हरा... हरा... हरा... (दिखता है)। आहाहा! उसमें से त्रस होना कठिन, उसमें उसे मनुष्य होना कठिन, उसमें उसे लम्बा आयुष्य मिलना कठिन, उसमें उसे आयुष्य में निरोगता रहना कठिन, उसमें उसे वीतराग की सच्ची वाणी कान में पड़ना मुश्किल। आहाहा! सच्ची वाणी तो यह है। आहाहा!

लाख बात की बात भी यह है। चाहे जितनी बात आवे। आहाहा! मात्र आत्मा की अवश्य अन्दर आवश्यक एक को ही करनेयोग्य है क्योंकि उससे ही पुण्य और पाप का नाश होता है और उससे ही मुक्ति का मूल है तो मुक्ति मिलती है। कहो, शान्तिभाई! इसमें कहीं पैसा-बैसा का, जवाहरात का कुछ नहीं आया। यह लाख, दो लाख, पाँच लाख खर्च करे... आहाहा! यह अभी एक चौपानिया (अखबार) आया था तो धर्मचन्दभाई बताने आये थे। कितनों के नाम दिये हैं।अमुक के और अमुक के बड़े-बड़े। आहाहा! अरेरे! भाई! यह महिमा कब तक रहेगी? प्रभु! दुनिया बड़ा माने, दुनिया बड़ा कहे, कितने काल रहेगा यह? तू तो अनादि-अनन्त है। आहाहा! यह दुनिया की महत्ता तेरे साथ नहीं आयेगी। आहाहा! और उससे तुझे लाभ नहीं होगा।

अवश्य का (यह) एक है। सामायिक तो यह, प्रतिक्रमण तो यह, प्रत्याख्यान तो यह, चौविसंथा तो यह, वन्दन तो यह, कायोत्सर्ग तो यह, प्रत्याख्यान तो यह (एक है)। आहाहा! अवश्य करने का चैतन्य भगवान अनन्त आनन्द का कन्द नाथ, उसके आश्रय से एक ही करनेयोग्य है, आवश्यक तो यह एक ही है। आहाहा!

(ऐसा करने से) सदा निज रस के विस्तार से पूर्ण भरा होने के कारण... आहाहा! कैसा है भगवान? अब यह कहते हैं। आत्मा कैसा है? सदा निज रस के... अर्थात् आनन्द के रस के विस्तार से पूर्ण भरा होने के कारण पवित्र... प्रभु है। आहाहा! भगवान आत्मा जिसे कहते हैं, वह तो पवित्र है। उसमें अपवित्र की गन्ध नहीं है। आहाहा! यह आत्मा का कर्तव्य कर, आवश्यक काम कर - ऐसा कहते हैं। आहाहा! पहले बात की, परन्तु आत्मा कैसा है कि जिसे अवश्य काम करना, उसके सन्मुख जाकर अन्दर का। तो कहते हैं, अनन्त सदा निज रस... आनन्द के रस से विस्तार से पूर्ण भरा होने के कारण पवित्र... है। यह प्रभु पवित्र है। इससे (अधिक) कोई पवित्र है नहीं। आहाहा! दूसरे कोई अपवित्र कार्य से यह पवित्र कार्य नहीं होता (या) पवित्र के सामने देखा जाए, सन्मुख

हुआ जाए, ऐसा नहीं है। आहाहा! और पुराण (सनातन) ऐसा वह आत्मा... यह सनातन है। यह पुण्य-पाप का नाश होना और मुक्ति प्राप्त होना, वह तो पर्याय है। समझ में आया? पहले कहा वह तो पर्याय की बात की है। पुण्य-पाप का नाश और मुक्ति का मूल, वह तो पर्याय (हुई) परन्तु वस्तु क्या? वस्तु तो अनादि-अनन्त है। आहाहा! अनादि-अनन्त। निज रस के विस्तार से पूर्ण भरा होने के कारण... आहाहा! निज अर्थात् अपने, सदा अर्थात् तीनों काल आनन्द के रस और शान्ति रस के फैलाव से... आहाहा! पूर्ण भरपूर होने के कारण। जैसे पूर्ण घड़ा भरा हो, वैसे आत्मा भगवान पूर्ण आनन्दादि स्वभाव से पूर्ण भरपूर है। आहाहा! आठ वर्ष में समझकर केवल (ज्ञान) प्राप्त करके मोक्ष जाता है। आहाहा! अन्तर की ऋद्धि, चैतन्य चमत्कारिक प्रभु... आहाहा! कहा न?

सदा निज रस... तीनों काल निज रस से भरपूर भगवान का फैलाव है, अन्दर विस्तार है। पूर्ण होने के कारण प्रभु तो पवित्र है। आहाहा! उस पवित्र का आश्रय, वह अवश्य कर्तव्य आवश्यक है, ऐसा कहते हैं। पवित्र जो आत्मा, उसके सन्मुख (होना), वह अवश्य आवश्यक है। वह करनेयोग्य है। आहाहा! तब यह पढ़ना कब? पढ़े बिना समझ में नहीं आता। पहले पढ़ना? पढ़ना कहाँ? आठ वर्ष का बालक भी केवलज्ञान प्राप्त कर जाता है। आहाहा! क्योंकि सनातन पवित्र पड़ा है। अनादि-अनन्त अन्दर पवित्र भगवान है, उसे कोई काल लागू नहीं पड़ता। आहाहा!

सनातन पवित्र है, ऐसा वह आत्मा... आहाहा! ऐसा यह आत्मा वाणी से दूर... वाणी से कहा जा सके, ऐसा नहीं है, कहते हैं। यह सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया न? वीतराग की वाणी में पूर्ण आया, ऐसा बोला जाता है। एक ओर कहते हैं कि वाणी का विषय नहीं है, वाणी जड़ है। चैतन्यतत्त्व से वह वाणी पूर्ण भिन्न तत्त्व जड़ है। आहाहा! भगवान जैसे पूर्ण पवित्रता से सदा भरपूर है, वैसे वाणी भी पूर्ण जड़ के स्वभाव से भरपूर है। आहाहा! वाणी तो ठीक, वाणी का एक-एक परमाणु, वाणी का एक-एक परमाणु पूर्ण जड़ के अनन्त गुण से भरा हुआ पूरा है। आहाहा!

वह आत्मा वाणी से दूर (वचन-अगोचर) ऐसे किसी सहज शाश्वत सुख को प्राप्त करता है। आहाहा! यह जो अवश्य काम करता है, सदानन्द प्रभु का आश्रय लेकर स्थिर होता है, उसे अवश्य कोई सहज शाश्वत सुख (प्राप्त होता है)। स्वाभाविक आनन्द

का सागर... आहाहा! अतीन्द्रिय सुख और आनन्द से भरचक भरा हुआ भगवान है। एक गुण से पवित्र नहीं, ऐसे अनन्त गुण से पवित्र है। आहाहा! इसका मान कहाँ आया है? कुछ बाहर का करे, उसका अर्थ कि अन्दर से निकल जाए, तब इसे ठीक पड़े। भगवान आत्मा में से कुछ निकले तो बाहर दिखे और दुनिया को खबर भी पड़े। आहाहा! फोटो आये हैं। हिन्दुस्तान के परिचित सब बड़े पुरुष आये हैं। उसमें क्या भला हुआ? आहाहा! दुनिया में महिमा हुई, दुनिया में प्रसिद्ध हुए, दुनिया में सामने पड़ा, दुनिया में सामने पड़ा। भटकने में सामने पड़ा। आहाहा!

ऐसा वह आत्मा वाणी से दूर... है। आहाहा! तो प्रभु! आप कहते हो न यह? वह वाणी से दूर है। वाणी वहाँ स्पर्श नहीं करती। वह वाणी का विषय नहीं है। वह तो निर्विकल्प तत्त्व है। आहाहा! ऐसा वह आत्मा वाणी से दूर (वचन-अगोचर) ऐसे किसी सहज... जो इस परम आवश्यक को सहज आत्मा के अवलम्बन से एक को ही अवश्य करता है, वह सहज शाश्वत सुख को प्राप्त करता है। आहाहा! प्राप्त करता है तो पर्याय में, परन्तु वह शाश्वत् अर्थात् पश्चात् नहीं जाता। आत्मा तो त्रिकाल है परन्तु इस सहज सुख को पाता है, वह तो पर्याय है। वस्तु जो है त्रिकाल सहज परम पवित्रता से भरपूर है, परन्तु उसका अवलम्बन लेकर उसमें जो स्थिर होता है, वह अवश्य सहज शाश्वत सुख को प्राप्त करता है। वह स्वाभाविक अन्दर में जो सुख भरा है, आनन्द से भरपूर है, (उसे प्राप्त करता है)।

पहले कह गये न सदा निज रस के विस्तार से पूर्ण भरा होने के कारण... इसके ऊपर लाईन कही। सदा निज रस के... निज रस के। जिसमें राग का रस नहीं, निमित्त का रस नहीं। आहाहा! निज रस के विस्तार से पूर्ण भरा होने के कारण पवित्र... सहज शाश्वत सुख को प्राप्त करता है। वह पर्याय में पवित्रता, स्वाभाविक शाश्वत सुख आया, वह जाता नहीं। सादि-अनन्त... आहाहा! ऐसे सुख को प्राप्त करता है। कहो, एक कलश में कितना आया! निश्चय से अस्ति आयी, व्यवहार की नास्ति आयी, अनेकपने की नास्ति आयी, एकपने की अस्ति आयी, त्रिकालपने के रस से भरपूर का आश्रय लेने से शाश्वत सुख को पाता है। आहाहा!

श्लोक-२५७

(अनुष्टुप्)

स्ववशस्य मुनीन्द्रस्य स्वात्मचिन्तनमुत्तमम् ।

इदं चावश्यकं कर्म स्यान्मूलं मुक्तिशर्मणः ॥२५७॥

(वीरछन्द)

स्ववश मुनीश्वर को उत्तम निज आत्म अनुभवन होता है ।

और यही आवश्यक कर्म मुक्ति-सुख कारण होता है ॥२५७॥

[श्लोकार्थः] स्ववश मुनीन्द्र को उत्तम स्वात्मचिन्तन (निजात्मानुभवन) होता है; और यह (निजात्मानुभवनरूप) आवश्यक कर्म (उसे) मुक्तिसौख्य का कारण होता है ॥२५७॥

श्लोक - २५७ पर प्रवचन

२५७ (श्लोक)

स्ववशस्य मुनीन्द्रस्य स्वात्मचिन्तनमुत्तमम् ।

इदं चावश्यकं कर्म स्यान्मूलं मुक्तिशर्मणः ॥२५७॥

श्लोकार्थः स्ववश मुनीन्द्र को... स्वभाव के वश हुए मुनीन्द्र किसे कहना ? स्वभाव के आधीन हुए मुनीन्द्र किसे कहना ? कि जो उत्तम स्वात्मचिन्तन... कि जो उत्तम स्वात्मचिन्तन अर्थात् अनुभव । चिन्तन का अर्थ यहाँ अनुभव है । चिन्तन अर्थात् विकल्प नहीं । आहाहा ! यहाँ दुकान आदि से निवृत्ति बारह महीने में एक महीने, दो महीने निवृत्ति लेनी हो तो ले नहीं सके । आठ-दस दिन, पन्द्रह दिन महा कठिनता से ले । आहाहा ! अब उसमें ऐसी बात ! आहाहा !

स्ववश मुनीन्द्र को... चैतन्यस्वभाव शुद्ध पवित्र भगवान, उसके वश हुए, उसके सन्मुख हुए, उसमें तल्लीन हुए । आहाहा ! वह उत्तम स्वात्मचिन्तन... उत्तम स्वात्म

अनुभव है वह। वह आत्मा के आनन्द का रस है। आहाहा! अनुभव अर्थात् आनन्द का रस है। आहाहा! ऐसे अनुभव को आत्मचिन्तन होता है। स्ववश मुनीन्द्र को उत्तम आत्म-अनुभव होता है। आहाहा! मुनीन्द्र मुनि भले हुए परन्तु जिसे स्ववश आत्म आश्रय अनुभव है, उसे यहाँ मुनि कहा गया है। आहाहा! आया न इसमें ?

और यह (निजात्मानुभवनरूप) आवश्यक कर्म (उसे)... आहाहा! मुक्तिसौख्य का कारण होता है। आहाहा! उसे मुक्ति के सुख का कारण (होता है)। चैतन्यस्वभाव जो भगवान्, वह पूर्ण हीरा भरपूर, अनन्त गुण के पासा से जैसे हीरा भरा हो। आहाहा! हीरा को तो अनन्त गुण होते नहीं। आहाहा! अनन्त सुख को प्राप्त करता है, वह सहज शाश्वत् है। **स्ववश मुनीन्द्र को उत्तम स्वात्मचिन्तन (निजात्मानुभवन) होता है; और यह (निजात्मानुभवनरूप) आवश्यक कर्म... मुनीन्द्र का यह कार्य है।** कर्म अर्थात् कार्य। मुनि की यह पर्याय है। मुनि की यह दशा है, मुनि की यह हालत है। कर्म अर्थात् कार्य। आवश्यक कार्य उसे मुक्तिसौख्य का कारण है। आहाहा! है? **(निजात्मानुभवनरूप) आवश्यक कर्म... वह अवश्य का कर्म आवश्यक है।** यह बाहर के सामायिक, चौविसंथो, वन्दन यह सब तो शुभराग है, यह कहीं आवश्यक और अवश्य करनेयोग्य नहीं है। वह तो छोड़नेयोग्य है। आहाहा! छोड़नेयोग्य है, उसे आदरणीय मानता है। आहाहा!

अरे! प्रभु! तू कहाँ तक दुःखी रहेगा? प्रभु! तू आनन्द है न! सभी आत्माएँ आनन्दमूर्ति हैं न, प्रभु! सब आत्माएँ आनन्द और पवित्रता से भरपूर हैं न! आनन्द को प्राप्त करो न, प्रभु! तुम कब तक दुःख भोगोगे? आहाहा! यह नरक के और निगोद के... आहाहा! पराधीनता के दुःख। इस दुःख की व्याख्या कठोर। यह गिलहरी और चिड़िया ऐसे घूमते हैं, कौवे आकर पकड़कर खा जाते हैं। आहाहा! चिड़िया बाहर घूमे। कमरा है न कमरा? वहाँ घूमते हैं। कौआ आकर उठाकर खा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : कौआ आकर पकड़ लेता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ लेता है। बड़ी होवे तब तो एकदम दौड़कर कहीं चली जाए, परन्तु छोटा होवे तो इतना चल नहीं सके। कौआ ले जाए। कमरे के ऊपर से ले जाता है। आहाहा! दिखता है। कौवे का ध्यान होता है कि गिलहरी, चिड़िया का बच्चा कहीं घूमता हो तो पकड़ ले। आहाहा! इन सब दुःखों से मुक्त होना होवे तो सुख की प्राप्ति का

कारण तो स्व आवश्यक है। सुख की प्राप्ति का कारण स्व आवश्यक। भगवान आत्मा पहिचाने बिना अवश्य कर्तव्य आयेगा कहाँ से? आत्मा कितना है? कैसा है? यह जब तक दृष्टि में न आवे, तब तक उसमें स्थिर कहाँ से होगा? वस्तु दृष्टि में आवे, पश्चात् उसमें स्थिर हो। दृष्टि में आये बिना स्थिर कहाँ हो? ज्ञान में चीज़ आयी नहीं, अब स्थिर किसमें होना? आहाहा! पहले ज्ञान इस प्रकार सम्यग्दर्शन अनुभव होता है, तब उसमें उसे स्थिर होना बनता है। आहाहा! तो यह सब करता है वह क्या? सब सामायिक और प्रतिक्रमण... आहाहा! हमने भी सब किये थे, हों! वहाँ पालेज। प्रतिक्रमण करें, आठ दिन। आठ ही दिन, हों! आठ दिन सब इकट्ठे होकर प्रतिक्रमण करें तो सब प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। अपने पर्यूषण के दिन हैं, धर्म किया। राग और अभिमान दोनों है। यह कर्तापने का मिथ्यात्व और कर्ता हो, इसलिए जरा शुभभाव (हों)। आहाहा! मिथ्यात्व अशुभ, भाव शुभ वह वास्तव में अशुभ है परन्तु उसे नहीं कहा जाता। नहीं तो वह अशुभ के साथ अशुभ होता है। अशुभ के साथ शुभ नहीं होता। क्या कहा?

जहाँ मिथ्यात्व है, वही अशुभ है। इसलिए शास्त्रकार ने तो ऐसा भी कहा है कि मिथ्यादृष्टि को शुभभाव नहीं होता। शुभ तो समकित्ती को होता है। उसे शुभ होता है तो भी गिना नहीं। क्योंकि मिथ्यात्व है, वह महा अशुभ है। उसके साथ का भाव आवे, वह जरा सा, उसे शुभ कैसे कहना? आहाहा! वे दोनों अशुभ ही हैं। मिथ्यात्व और शुभभाव दोनों अशुभ ही हैं। आहाहा! दोनों नाश करनेयोग्य हैं। आहाहा! दोनों का आश्रय लेने योग्य नहीं। आश्रय लेनेयोग्य तो भगवान है, इसलिए कहा कि आवश्यक कर्म, ऐसा जो आवश्यक कार्य। आहाहा!

मुनि ने बहुत थोड़े शब्दों में ठेठ मूल पकड़ा है। आहाहा! मूल-मूल पकड़ा है, मूल। ऐसा जो निजात्म अनुभव कर्म, उसे मुक्ति सौख्य का कारण होता है। लो! मोक्ष के सुख का कारण उसे होता है। आहाहा! दुनिया कहाँ पड़ी है! दो पृष्ठ लाये थे धर्मचन्द्रभाई। दो शब्द उसमें थे। इन्दिरा गाँधी ने लड़के के गुणगान किये हैं। मर गया उसके। पलंग पर पड़-पड़कर मर जाए, उसकी अपेक्षा मर गया बहुत अच्छा है, ऐसा लिखा है। अच्छे मरण से मर गया है। ऐसा है न? धर्मचन्द्रभाई!

मुमुक्षु : रजनीश ने ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : रजनीश ने ऐसा कहा, ऐसा न ? ठीक ! कहो, यह धर्म ! अर..र.. ! महासंसार का प्रवीण, संसार का चतुर । रजनीश ने कहा न ? आहाहा ! यह रजनीश धर्म की बात करे, प्रभु ! प्रभु ! अरे ! सत्य बात करे, वहाँ सुहावे नहीं । कठिन बात है । आहाहा ! वह तो महा अधर्म का काम करता था ।

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! आवश्यक कर्म तो उसे कहते हैं कि जो मुक्ति सौख्य का कारण हो । आया न ? आवश्यक कर्म (उसे) मुक्तिसौख्य का कारण होता है । आहाहा ! मुक्त स्वभाव आत्मा है । पुण्य-पाप अधिकार में आता है न ? पुण्य-पाप बन्ध है, तो बन्ध में से बन्ध ही होगा । और आत्मा मुक्त है तो उसके आश्रय से ही मुक्ति होगी । बन्ध के आश्रय से बन्ध होगा और मुक्ति के आश्रय से मुक्ति होगी । आहाहा ! समयसार में पुण्य-पाप के अधिकार में आता है । सूक्ष्म बात है, भाई ! आहाहा ! यह १४८ (गाथा पूरी) हुई ।

गाथा-१४९

आवासण जुत्तो समणो सो होदि अंतरंगप्पा ।
आवासयपरिहीणो समणो सो होदि बहिरप्पा ॥१४९॥

आवश्यककेन युक्तः श्रमणः स भवत्यन्तरङ्गात्मा ।

आवश्यकपरिहीणः श्रमणः स भवति बहिरात्मा ॥१४९॥

अत्रावश्यककर्माभावे तपोधनो बहिरात्मा भवतीत्युक्तः । अभेदानुपचाररत्नत्रयात्मक-
स्वात्मानुष्ठाननियतपरमावश्यककर्मणानवरतसंयुक्तः स्ववशाभिधानपरमश्रमणः सर्वोत्कृष्टो-
ऽन्तरात्मा, षोडशकषायाणामभावादयं क्षीणमोहपदवीं परिप्राप्य स्थितो महात्मा । असंयत-
सम्यग्दृष्टिर्जघन्यान्तरात्मा । अनयोर्मध्यमाः सर्वे मध्यमान्तरात्मानः । निश्चयव्यवहारनयद्वय-
प्रणीतपरमावश्यकक्रियाविहीनो बहिरात्मेति ।

उक्तञ्च मार्गप्रकाशे ह

(अनुष्टुप्)

बहिरात्मान्तरात्मेति स्यादन्यसमयो द्विधा ।
बहिरात्मानयोर्देहकरणाद्युदितात्मधीः ॥
जघन्य-मध्यमोत्कृष्ट-भेदादविरतः सुदृक् ।
प्रथमः क्षीणमोहोऽन्त्यो मध्यमोमध्यमस्तयोः ॥

तथाहि ह

रे साधु आवश्यक-सहित वह अन्तरात्मा जानिये ।

इससे रहित हो साधु जो बहिरात्मा पहिचानिये ॥१४९॥

अन्वयार्थः [आवश्यककेन युक्तः] आवश्यक सहित [श्रमणः] श्रमण, [सः]
वह [अंतरंगात्मा] अन्तरात्मा [भवति] है; [आवश्यकपरिहीणः] आवश्यक रहित
[श्रमणः] श्रमण, [सः] वह [बहिरात्मा] बहिरात्मा [भवति] है ।

टीका : यहाँ, आवश्यक कर्म के अभाव में तपोधन बहिरात्मा होता है, ऐसा कहा है।

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयात्मक *स्वात्मानुष्ठान में नियत परमावश्यक-कर्म से निरन्तर संयुक्त ऐसा जो 'स्ववश' नाम का परम श्रमण, वह सर्वोत्कृष्ट अन्तरात्मा है; यह महात्मा सोलह कषायों के अभाव द्वारा क्षीणमोहपदवी को प्राप्त करके स्थित है। असंयत सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा है। इन दो के मध्य में स्थित सर्व मध्यम अन्तरात्मा हैं। निश्चय और व्यवहार इन दो नयों से प्रणीत जो परम आवश्यक क्रिया, उससे जो रहित हो, वह बहिरात्मा है।

श्री मार्गप्रकाश में भी (दो श्लोकों द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

बहिरात्मा अरु अन्तरात्मा अन्य-समय के उभय प्रकार।

तन-इन्द्रिय में आत्मबुद्धि करनेवाले बहिरात्मा जान।।

[श्लोकार्थः] अन्य समय (अर्थात् परमात्मा के अतिरिक्त जीव) बहिरात्मा और अन्तरात्मा ऐसे दो प्रकार के हैं; उनमें बहिरात्मा देह-इन्द्रिय आदि में आत्मबुद्धिवाला होता है।

(वीरछन्द)

अन्तरात्मा उत्तम मध्यम जघन तीन, समदृष्टि जघन।

क्षीणमोह है उत्तम इनके मध्य स्थित जानो मध्यम।।

[श्लोकार्थः] अन्तरात्मा के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट, ऐसे (तीन) भेद हैं; अविरत सम्यग्दृष्टि, वह प्रथम (जघन्य) अन्तरात्मा है; क्षीणमोह, वह अन्तिम (उत्कृष्ट) अन्तरात्मा है और उन दो के मध्य में स्थित, वह मध्यम अन्तरात्मा है।

* स्वात्मानुष्ठान=निज आत्मा का आचरण। (परम आवश्यक कर्म अभेद-अनुपचाररत्नत्रयस्वरूप स्वात्माचरण में नियम से विद्यमान है अर्थात् वह स्वात्माचरण ही परम आवश्यक कर्म है।)

१४९ गाथा ।

आवासण जुत्तो समणो सो होदि अंतरंगप्पा ।

आवासयपरिहीणो समणो सो होदि बहिरप्पा ॥१४९॥

रे साधु आवश्यक-सहित वह अन्तरात्मा जानिये ।

इससे रहित हो साधु जो बहिरात्मा पहिचानिये ॥१४९॥

यह आवश्यक-निश्चय आवश्यक । आहाहा ! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसके आश्रय से.... आहाहा ! उसका एक आचरण ही अंतरंगप्पा कहलाता है । उसे अन्तरात्मा, अन्तर में उतरा है, उसे अन्तरात्मा कहा जाता है । जो आनन्द का सागर भगवान, पूर्ण आनन्द भरपूर, पूर्ण ज्ञान भरपूर, अरे ! पूर्ण वीर्य, वीररस, ज्ञानरस, शान्तरस, आनन्दरस पूर्ण रस से भरपूर प्रभु है । ऐसे अनन्त-अनन्त रस के गुण से भरपूर है । आहाहा ! वह उसे मुक्ति सुख का कारण है । अब १४९

टीका : यहाँ, आवश्यक कर्म के अभाव में... यह जहाँ आत्मा का अवलम्बन नहीं । जहाँ आत्मा आनन्दस्वरूप का अवलम्बन नहीं और पुण्य-पाप की क्रिया में-गड़बड़ में खड़ा रहा है... आहाहा ! पुण्य-पाप के जाल में गोते मारता है... आहाहा ! ऐसे आवश्यक कर्म के अभाव में तपोधन बहिरात्मा होता है... आहाहा ! जिसे आत्मा के आनन्द का आश्रय नहीं, वह बहिरात्मा है । आहाहा ! पुण्य करे तो बहिरात्मा है, यह बात नहीं ली है । यहाँ तो आवश्यक कर्म के अभाव में (-ऐसा कहा है) । आहाहा ! शुद्ध चैतन्य भगवान पुण्य और पाप के विकल्प से, राग से भिन्न भरपूर भगवान... आहाहा ! ऐसे सब भगवान पूर्ण हैं और उनमें अनन्त गुण से छलकाये हुए - भरे हुए हैं । आहाहा !

आचार्य ने तो यहाँ तक कहा न ? प्रभु ! तुझे यह दशा अब न रहो, अब । प्रभु ! यह तुझे शोभा नहीं देता, हों ! आहाहा ! अनन्त आनन्द से भरपूर भगवान, अनन्त शान्ति के रस का कन्द पूरा, उसके बिना तुझे यह सब शोभता है ? यह नहीं शोभता, प्रभु ! आहाहा ! दुश्मन को भी ऐसा कहते हैं । जैनधर्म का विरोधी हो, उसे भी ऐसा कहते हैं कि प्रभु ! तू सुखी हो । यह राग और एकत्वबुद्धि छोड़कर आत्मा के आश्रय में आ जा, बापू ! दुःख

कठोर पड़ेगा, भाई! आहाहा! कोई प्राणी दुःखी हो, ऐसी भावना धर्मी की नहीं होती। दुश्मनपना छोड़ दे, आनन्द के अन्दर जा। आहाहा! ऐसा कहा न?

आवश्यक कर्म के अभाव में तपोधन बहिरात्मा होता है... आहाहा! **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयात्मक...** अब यह आवश्यक कौन सा? ऐसा कहते हैं। निश्चय आवश्यक, निश्चय अवश्य का, जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, उसमें वीर्य स्फुरित हुए बिना नहीं रहता। रुचि अनुयायी वीर्य। जिसकी रुचि हो, वहाँ वीर्यरस ढले बिना नहीं रहता। आहाहा! इसकी रुचि नहीं तो इसकी ओर झुकाव नहीं हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : जिसकी यादशक्ति कच्ची हो, वह क्या करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ यादशक्ति का काम नहीं है। यहाँ तो पूर्णानन्द का नाथ, उसे पकड़ना। एक ही बात। भले नाम न आता हो। आत्मा नाम भी न आता हो। तिर्यच को नव तत्त्व के नाम भी नहीं आते और क्षायिक समकित होता है। जुगलिया को, यहाँ पहले समकित नहीं हुआ? यहाँ तिर्यचगति का आयुष्य बँध गया और बाद में क्षायिक समकित हुआ। अब वह मरकर कहाँ जाए? जुगलिया। भोगभूमि। देवकुरु-उत्तरकुरु वहाँ अवतरित हो। समकित... आहाहा! आयुष्य पहले बँध गया और बाद में हुआ समकित। श्रेणिक को नरक का आयुष्य बँध गया, बाद में हुआ समकित। नरक का आयुष्य बँध गया तो नरक में जाना पड़ा। परन्तु तिर्यच का आयुष्य बँध गया हो और समकित (बाद में) समकित होवे तो जुगलिया में जाना पड़े। आहाहा! देवकुरु-उत्तरकुरु (भोगभूमि)। वहाँ बाह्य दुःख की गन्ध नहीं है। बाहर के सुख का-सुविधा का पार नहीं है। वहाँ पकाना नहीं पड़ता, अनाज बोना नहीं पड़ता। बो कर नहीं खाना पड़ता। कहो। आहाहा! देव में कहाँ पकाना पड़ता है उसे? उसे तो एक हजार वर्ष में डकार आती है। आहाहा! इतनी अधिक निवृत्ति, तथापि आत्मा के प्रति निवृत्ति नहीं करता। आहाहा! कितनी निवृत्ति! उसे वस्त्र की आवश्यकता नहीं; शाश्वत् तैयार होते हैं। देवलोक में शाश्वत् वस्त्र तैयार होते हैं। आहहा! उसे बुनना नहीं पड़ता, भिगोना नहीं पड़ता, करना नहीं पड़ता। आहाहा! लकड़ियाँ, कण्डे लेना नहीं पड़ता, पकाना नहीं पड़ता।

मुमुक्षु : पकाना नहीं पड़ता, फिर लकड़ियाँ, कण्डे की कहाँ आवश्यकता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई एक वस्तु नहीं। आहाहा! इतनी निवृत्ति होने पर भी आत्मा

की ओर झुकाव नहीं करता—ऐसा मेरा कहना है। आहाहा! तो भी बाहर के फन्द में फँस जाता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयात्मक...** अभेद-अनुपचार। भेद नहीं। यह दर्शन-ज्ञान और चारित्र्य, ऐसे भेद नहीं। अभेद-अनुपचार। उपचार नहीं, आरोप नहीं। अभेद अनुपचार रत्नत्रयस्वरूप भगवान, **स्वात्मानुष्ठान...** यह स्व-आत्मा का अनुष्ठान। उस **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयात्मक स्वात्मानुष्ठान...** आहाहा! नीचे अर्थ (फुटनोट में) निज आत्मा का आचरण। (परम आवश्यक कर्म **अभेद-अनुपचाररत्नत्रयस्वरूप स्वात्माचरण** में नियम से विद्यमान है अर्थात् वह स्वात्माचरण ही परम आवश्यक कर्म है।) आहाहा! भगवानआत्मा अनन्त गुण से भरपूर, उसके अवलम्बन की पर्याय है, वह जरूर-आवश्यक मोक्ष का कारण है। आहाहा! बाकी कोई क्रियाकाण्ड धर्म का कुछ कारण नहीं है। आहाहा!

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयस्वरूप स्वात्मानुष्ठान में... स्व आत्मा का अनुष्ठान-अपने आत्मा का आचरण। आहाहा! कुछ अनुष्ठान करते हो? (-ऐसे पूछे)। वह अनुष्ठान-आचरण। स्व आनन्दस्वरूप भगवान का आचरण, वह अनुष्ठान, वह आत्मा का अनुष्ठान। उसमें जो **नियत परमावश्यक-कर्म से निरन्तर संयुक्त...** होवे। आहाहा! ऐसी निश्चय स्वात्मानुभव रत्नत्रयरूप क्रिया, उससे निश्चय परम आवश्यक कर्म से निरन्तर संयुक्त ऐसा। आहाहा! वापस उसमें भी निरन्तर। एक समय का भेद नहीं। आहाहा! जैसे स्वयं सदा प्रभु निरन्तर है, वैसे उसका निश्चय आवश्यक सदा निरन्तर है। आहाहा! भगवान आत्मा अनादि-अनन्त सनातन है तो उसके आश्रय से पर्याय शाश्वत मिले, ऐसी है।

निरन्तर संयुक्त ऐसा जो 'स्ववश' नाम का... आहाहा! **'स्ववश' नाम का परम श्रमण...** आहाहा! स्वयं के आधीन हुआ, ऐसा स्ववश मुनि। जो विकल्प की आधीनता छोड़कर, बाहर के अनुष्ठान की आधीनता छोड़ा; आत्मा के अनुष्ठान और आचरण में रहता हुआ... आहाहा! **परम श्रमण वह सर्वोत्कृष्ट अन्तरात्मा है;**... लो! बाहरवें गुणस्थान में वीतराग... सर्वोत्कृष्ट अन्तरात्मा। सर्व उत्कृष्ट अन्तरात्मा। **यह महात्मा सोलह कषायों के अभाव द्वारा...** बारहवाँ गुणस्थान। अन्तरात्मा की अन्तिम दशा बारहवाँ गुणस्थान। पश्चात् तुरन्त तेरहवाँ, उसका फल।

सोलह कषायों के अभाव द्वारा क्षीणमोहपदवी को प्राप्त करके... आहाहा! क्षीणमोह के नाश की (बारहवें गुणस्थान की) प्राप्ति करके स्थित है। आहाहा। अन्दर में जम गया है, कहते हैं। आहाहा! अपना जो आत्मस्वरूप अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय वीर्य, अतीन्द्रिय शान्ति और अतीन्द्रिय सुख, उसमें जम गया है। आहाहा! वह उत्कृष्ट अन्तरात्मा है। सोलह कषायों के अभाव द्वारा क्षीणमोहपदवी को प्राप्त करके... यह क्षीणमोह पदवी। बारहवाँ गुणस्थान। आहाहा! क्षीणमोहपदवी को प्राप्त करके स्थित है। आहाहा! असंयत सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा है। यहाँ लिया, देखा! असंयत सम्यग्दृष्टि भी जघन्य अन्तरात्मा है। कोई कहता है न कि समकित्ती को अनुभूति नहीं होती, चौथे (गुणस्थान) में अनुभूति नहीं होती। सम्यग्दर्शन होता है, वहाँ अनुभूति नहीं होती - ऐसे अर्थ करते हैं। असंयत सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा है। चौथे गुणस्थान में वह निचली श्रेणी में जघन्य अन्तरात्मा है। है तो अन्तरात्मा, परन्तु जघन्य। इन दो के मध्य में स्थित सर्व मध्यम अन्तरात्मा हैं। क्षीणमोह है, वह उत्कृष्ट अन्तरात्मा है। चौथे में है, वह जघन्य अन्तरात्मा है। इन दो के मध्य में स्थित सर्व मध्यम अन्तरात्मा हैं। अन्तरात्मा की व्याख्या की। तीन प्रकार—उत्कृष्ट अन्तरात्मा क्षीणमोह; जघन्य अन्तरात्मा समकित्ती; मध्यम पाँचवें से ग्यारहवें (गुणस्थानवर्ती) मध्यम (अन्तरात्मा)। आहाहा! परन्तु सब अन्तरात्मा हैं। अन्तर को साधते हैं और एक अन्तर्मुहूर्त में केवल को पानेवाले हैं। आहाहा!

निश्चय और व्यवहार इन दो नयों से प्रणीत... आहाहा! यह वीतराग का मार्ग। निश्चय और व्यवहार, इन दो नयों से प्रणीत। भगवान ने दो नयों से कहा है। एक ही निश्चयनय से (नहीं कहा है)। व्यवहार से बात (की है)। व्यवहार का विषय है। व्यवहार का विषय है, व्यवहारनय है। नय है, वह विषयी है तो उसका विषय भी है। भगवान की वाणी में दोनों नयों का उपदेश आया है। एक ही नय का उपदेश नहीं आया। आदर एक का, उपदेश दो नयों का। आहाहा! है ?

निश्चय और व्यवहार इन दो नयों से प्रणीत जो परम आवश्यक क्रिया उससे जो रहित हो, वह बहिरात्मा है। दो से रहित कहा, एक से नहीं। निश्चयसहित व्यवहार न हो तो वह बहिरात्मा है। आहाहा! परम आवश्यक क्रिया उससे जो रहित हो... निश्चय और व्यवहार दोनों; व्यवहार में विकल्प है, निश्चय में निर्विकल्प है। साधक है, इसलिए

दोनों होते हैं। केवलज्ञानी परमात्मा नहीं। इससे वह बहिरात्मा है। आहाहा! बहिर-आत्मा। आत्मा के अतिरिक्त बाह्य कोई भी चीज़ जो है, उसमें से किसी एक चीज़ को (भी) अपना मानना, वह बहिरात्मा है। आहाहा! अन्तरात्मा अपने पूर्ण स्वरूप को ही मानता है। इसके अतिरिक्त अन्य शुभभाव से लेकर अनन्त चीज़ों को अपनी नहीं मानता। वह जघन्य अन्तरात्मा है। आहाहा! बाहर का एक विकल्प भी अपना है, ऐसा नहीं मानता। शुभराग आवे, भक्ति आवे, परन्तु वह मेरी है—ऐसा नहीं मानता। है न?

निश्चय और व्यवहार इन दो नयों से प्रणीत जो परम आवश्यक... शाम-सवेरे मुनि को प्रतिक्रमण होता है न? विकल्प होता है, व्यवहार होता है और वह व्यवहार से छोड़कर जाना है निश्चय में। वहाँ अटकना नहीं है। निचली भूमिका में वह आता है, परन्तु उसे छोड़कर जाना है अन्दर में। दो नयों से प्रणीत जो परम आवश्यक क्रिया उससे जो रहित हो, वह बहिरात्मा है। विशेष कहेंगे.... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)